जलवायु परिवर्तन 21वीं शताब्दी के परिप्रेक्ष्य में

अशोक कुमार द्विवेदी
वैज्ञानिक 'स'

पृथ्वी के अस्तित्व से ही एक प्राकृतिक व्यवस्था का उदय हुआ, जिसके अन्तर्गत अनेकों जलवायु परिवर्तन होते आये हैं, परन्तु 60वीं दशक के बाद हुए जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को वैश्विक तापवृद्धि (ग्लोबल वार्मिंग) के रुप में महसूस किया जाने लगा। आज हर व्यक्ति पर्यावरण की बात करता है तथा ग्लोबल वार्मिंग के सवालों से जूझ रहा है। जगह-जगह होने वाली मुख्य चर्चाओं में इस मुद्दे को बहुत महत्यपूर्ण स्थान मिलने लगा है। इस समस्या से निजात पाने के लिए विश्व की सरकारें अनेक उपाय करने में अहम भूमिका निभा रहीं हैं।

जलवायु परिवर्तन से हमारा तात्पर्य किसी स्थान के औसत मौसम से है, जो एक निश्चित अवधि में उस स्थान को प्रभावित करता है। वर्षा, सूर्य की किरणें, वायु, आर्द्रता एवं तापमान ऐसे कारक हैं, जो किसी स्थान की जलवायु को प्रभावित करते हैं; और यदि किंचित कारणों से मौसम में परिवर्तन का होना संभव है, जिसे समय-समय पर अनुभव भी किया जाता है, जबकि जलवायु परिवर्तन वर्षों के दौरान हुए औसत मौसमी परिवर्तन का परिणाम होता है। अतः इसे दैनिक जीवन में अनुभव करना अपेक्षाकृत कठिन है।

अतीत में भी पृथ्वी पर जलवायु परिवर्तन होता रहा है, और धरती के जीवधारी समय-समय पर अपने को अप्रत्याशित रुप से इन परिवर्तनों के प्रति सकारात्मक रुख का परिचय देते आए हैं और अपने को जलवायु के अनुरुप ढालते आए हैं अथवा आवश्यकता के अनुसार रुपांतरित भी करते आए हैं, परन्तु इक्कीसवीं शताब्दी में होने वाला जलवायु परिवर्तन का प्रभाव कुछ अलग सा दिखने लगा है। एक अनुमान के अनुसार विगत लगभग 150-200 वर्षों के दौरान जलवायु परिवर्तन की दर में कुछ ज्यादा ही वृद्धि हुई है, तथा कुछ विशेष प्रजाति के पौधे एवं जीव-जन्तु स्वयं को परिवर्तित परिवेश में ढाल नहीं पाएं, जिससे ये या तो विलुप्त हो गए या विलुप्तता के कगार पर हैं, जिससे जैव विविधता अत्यन्त प्रभावित हुई है। प्रश्न यह उठता है कि आखिर इन सबके लिए जिम्मेदार है कौन? निश्चित ही मानवीय गतिविधियों के अनियंत्रित हस्तक्षेप ग्रीन हाउस गैसों की वृद्धि में सहायक रहे जिससे जलवायु पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। जन समुदाय एवं सरकारें इन हो रहे बदलावों के प्रति अत्यन्त संवेदनशील एवं चिंतित हैं। भारत सरकार के जल संसाधन मंत्रालय ने तो जलवायु परिवर्तन के अध्ययन के लिए 12वीं पंचवर्षीय परियोजना में बकायदा फ्रेमवर्क बना रखा है एवं देश के अनेक शीर्ष संस्थान, जिनमें भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, भारत के अग्रणी विश्वविद्यालय आदि इससे जुड़े अनुसंधान कार्यों में योगदान दे रहे हैं।

एक अनुमान के अनुसार पृथ्वी पर यदि ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन कम नहीं होता है तो 21वीं शताब्दी के अंत तक निम्न संभावनाओं से इन्कार नहीं किया जा सकता:

- जनसंख्या और आर्थिक वृद्धि के आधार पर तापमान 1 से 3.5^{0}C तक बढ़ने की संभावना ।
- समुद्र तल के लगभग 15-90 सें.मी. ऊँचा होने की संभावना, जिससे समुद्र के तटिय क्षेत्रों के डूबने की संभावना। तटीय क्षेत्र एवं छोटे द्वीप दुनिया के सबसे घनी आबादी वाले क्षेत्रों में से है। भूमंडलीय तापवृद्धि के कारण समुद्र स्तर में वृद्धि से सबसे अधिक खतरा भी इन्हें ही है। समुद्रों के गर्म होने तथा ध्रुवीय हिम पट्टियों के पिघलने के कारण अगली शताब्दी तक समुद्र का औसत स्तर आधा मीटर तक बढ़ने का

अनुमान है। समुद्र स्तर में वृद्धि का तटीय क्षेत्रों पर अनेक प्रभाव पड़ सकते है जिसमें आप्लावन एवं अपरदन, बाढ़ में वृद्धि एवं खारे पानी के प्रवेश के कारण भूमि का नाश शामिल है। यह सब तटीय खेती, पर्यटन, अलवणीय जल संसाधन, मत्स्य पालन, मानव स्थापना एवं स्वास्थ्य को विपरीततः प्रभावित कर सकते हैं। समुद्रों के बढ़ते स्तर से नीचे स्थित अनेक द्वीप राष्ट्रों जैसे मालदीव एवं समीपवर्ती द्वीप के अस्तित्व को खतरा हो सकता है।

- वर्षा एवं हिमपात के कारण बहुत सी नदियों में जल की उपलब्धता की बहुत कमी हो सकती है। कुछ में हिमानियों के पिघलने के कारण मात्रा बढ़ सकती है जैसे, हिमालय से निकलने वाली नदियां। जल उपलब्धता में परिवर्तन जल-विद्युत उत्पादन एवं कागज, औषधि एवं रसायन उत्पादन जैसे उद्योग को प्रभावित कर सकता है जिनमें अधिक मात्रा में जल का उपयोग होता है। भवन एवं अन्य आधारभूत संरचना आंधी तूफान एवं अन्य तीव्र घटनाओं के कारण असुरक्षित हो सकती हैं जिसके कारण नैसर्गिक परिवहन मार्ग भी अस्त-व्यस्त हो सकते है।
- जैव विविधता पर प्रतिकूल प्रभाव, अनेक जीवों के अनुकूलन पर विपरीत प्रभाव से उनके प्रजनन पर प्रभाव।
- वर्षा कहीं कम तो कहीं अधिक होगी एवं फसलों की उत्पादकता का ह्रास।
- तापमान एवं वर्षा में परिवर्तन तथा अप्रत्यक्षतः मिट्टी की गुणवत्ता, कीटों एवं बीमारियों के कारण कृषि की उपज प्रभावित होगी। विशेष रूप से भारत, अफ्रीका एवं मध्य-पूर्व में अनाज के उत्पादन में कमी संभावित है।
- तापमान बढ़ने के साथ परिस्थितियां कीटों विशेष रूप से टिड्डों के लिए सहज हो जाएंगी और वे कई प्रजनन चक्र पूरा कर अपनी जनसंख्या बढ़ा सकेंगे। ऊँचे अक्षांशों में (उत्तरी देशों में) तापमान के बढ़ने से कृषि को लाभ होगा क्योंकि शीत ऋतु छोटी होगी एवं शरद ऋतु लंबी होगी। इसका यह भी मतलब है कि तापमान में वृद्धि के साथ कीट उच्चतर अक्षांशों की तरफ बढ़ेंगे।
- चरम मौसम परिस्थितियां जैसे उच्च तापमान, भारी वर्षा, बाढ़ सूखा इत्यादि भी फसल उत्पादन को प्रभावित करेंगे; आदि ।

पृथ्वी के चारों ओर का वायुमंडल मुख्यतः नाइट्रोजन (78%), ऑक्सीजन (21%) तथा शेष 1% में सूक्ष्म मात्रा मे मिलने वाले गैसों से मिलकर बना है, जिनमें ग्रीन हाउस गैसें कार्बन डाईऑक्साइड, मीथेन, ओजोन, जलवाष्प, तथा नाइट्रस ऑक्साइड भी शामिल हैं। ये ग्रीनहाउस गैसें पृथ्वी के वायुमंडल को एक आवरण प्रदान करती है, जिससे सूर्य की पैराबैंगनी किरणें धरती की सतह तक नहीं पहुंच पातीं और जीव-जन्तु तथा वनस्पतियां सुरक्षित रह पाती हैं ।

जलवायु परिवर्तन के प्राकृतिक कारण

जलवायु परिवर्तन के लिए अनेक प्राकृतिक कारक उत्तरदायी हैं। उनमें से कुछ प्रमुख हैं महाद्वीपीय अपसरण, ज्वालामुखी, समुद्री लहरें, पृथ्वी का झुकाव, धूमकेतु तथा उल्कापिंड के अतिरिक्त सौर धब्बे आदि। आइए इन पर विस्तार से चर्चा करें।

(i) महाद्वीपीय भू-खण्डों का अलग होना: भू-वैज्ञानिकों के अनुसार हजारों वर्ष पहले सभी महाद्वीप एक-दूसरे से जुड़े हुए थे। उस समय पृथ्वी वैसी नहीं थी जैसी कि आज हमारे सामने है। सभी महाद्वीप एक बड़े भूभाग के टुकड़े थे। इस का प्रमाण जीवों पौधों के जीवाश्मों तथा दक्षिण अमेरिका पूर्वी तट तथा अफ्रीका की पश्चिमी तट

जिसके बीच में अटलांटिक महासागर है, से प्राप्त अवशेषों के अध्ययन से प्राप्त होता है। ऊष्णकटिबन्धीय पौधों के जीवाश्मों (कोयले के रूप में) की खोज से यह निष्कर्ष निकलता है कि भूतकाल में यह भूमि निश्चित रूप से भूमध्य रेखा के निकट रही होगी जहाँ का मौसम ऊष्णकटिबन्धीय था तथा यहाँ दलदली व पर्याप्त हरियाली थी। ऐसी मान्यता है कि आज जिन महाद्वीपों से हम परिचित हैं वे करोड़ों वर्ष पहले तब बने जब भूभाग शनैः-शनैः अलग होने लगे। इस विखंडन का प्रभाव मौसम पर भी पड़ा, क्योंकि इसने भू-भाग की भौतिक विशेषताओं, उनकी अवस्थिति एवं जल निकायों का स्थान परिवर्तित कर दिया। भू-भाग के इस विलगाव ने समुद्री लहरों की धार व हवा में परिवर्तन किया, जिसने मौसम को प्रभावित किया। महाद्वीपों का यह विखंडन आज भी जारी है। ऐसा अनुमान है कि हिमालय श्रृंखला 1 मि0मी0 की वर्ष दर ऊपर की ओर बढ़ रही है तथा भारतीय भू-भाग धीरे-धीरे परंतु लगातार एशियाई भू-भाग की ओर बढ़ने के संकेत प्राप्त हुए हैं।

(iii) ज्वालामुखी: जब कोई ज्वालामुखी में विस्फोट होता है तो यह वातावरण में बहुतायत से सल्फर डाइऑक्साइड, जल वाष्प, धूल एवं राख उड़ेल देता है। यद्यपि इसकी गतिविधि कुछ दिनों तक ही सीमित होती है तथापि, गैस एवं धूल की वृहद् मात्रा अनेक वर्षों तक मौसम की संरचना को प्रभावित कर सकती है। किसी प्रमुख विस्फोट से सल्फर डाइऑक्साइड गैस की लाखों टन मात्रा वायुमंडल की ऊपरी परत (समतापमंडल) में पहुँच सकती है तथा सूर्य से आने वाली किरणों को आंशिक रूप से ढक लेती हैं जिससे पृथ्वी पर ठंड/शीतलता छा जाती है। सल्फर डाइआक्साइड जल के साथ मिलकर सल्फ्यूरिक एसिड यानी गंधक अम्ल को जन्म देती है। इसके कण इतने छोटे होते हैं कि वर्षों तक तो ऊँचाई पर ही लटके रह सकते हैं, जो सूर्य की किरणों को प्रत्यार्पित करने में सक्षम होते हैं, जिससे भूमि को सूर्य की सामान्य ऊर्जा नहीं मिल पाती। फिलीपीन्स द्वीप के 'माउंट पिनाटोबा' में अप्रैल 1991 में विस्फोट हुआ एवं इससे वायुमंडल में हजारों टन गैस उत्सर्जित हुई। ऐसे विशाल ज्वालामुखी विस्फोट सौर विकिरणों को रोक सकने में समर्थ होते हैं, जिससे पृथ्वी का तापमान प्रभावित होता है। दूसरी आश्चर्यजनक घटना 1816 ई0 में घटित हुई, जिसे अक्सर ''ग्रीष्म जलवायु विहीन'' वर्ष कहा जाता है। न्यू इंग्लैन्ड एवं पश्चमी यूरोप में मौसम-संबंधी महत्वपूर्ण विघटनाएं घटी तथा संयुक्त राज्य अमेरिका एवं कनाडा में जानलेवा शीतलहर चली।

(iii) पृथ्वी का झुकाव: प्रत्येक वर्ष पृथ्वी सूर्य के चारों एक पूरी परिक्रमा करती है। यह अपने परिक्रमा मार्ग पर 23.5^0 के कोण पर लम्बवत झुकी हुई है। पृथ्वी के इस झुकाव के कारण, सूरज आधे समय जब पृथ्वी के उत्तरी भाग के समीप होता है तो इस भाग को उष्मा प्रदान करता है और बाकी आधा भाग ठंड से प्रभावित होता है। सूरज का चक्कर काटते हुए पृथ्वी के झुकाव के कारण ही मौसम की तीव्रता प्रभावित होती है- अधिक झुकाव का अर्थ है अधिक गर्मी और कम ठंड; कम झुकाव का अर्थ है कम गर्मी और अधिक ठंड। पृथ्वी की धुरी एक प्रकार से अंडाकार है; जिससे एक वर्ष में सूर्य और पृथ्वी की दूरी बदलती रहती है। हम सामान्यतः सोचते हैं कि पृथ्वी की धुरी निर्धारित है क्योंकि यह हमेशा ही पोलैरिस (जिसे ध्रुव तारा या नॉर्थ स्टार भी कहा जाता है) की तरफ इंगित करता प्रतीत होता है। वास्तव में यह एकदम स्थिर नहीं हैं। धुरी भी प्रति शताब्दी आधे डिग्री से कुछ अधिक की गति से हिल जाती है इसलिए पोलैरिस हमेशा ही उत्तर की तरफ इंगित करता हुआ न तो रहा है और न ही रहेगा। जब 2500 ई0पू0 वर्ष पहले, पिरामिड का निर्माण हुआ था, तो थुबन तारा (अल्फा ड्रैकोनिस) के निकट ध्रुव था। पृथ्वी की धुरी की दिशा में यह धीमा परिवर्तन, जिसे विषुवतीय 'अयन' भी कहा जाता है, जलवायु परिवर्तन के लिए उत्तरदायी है।

(iv) **समुद्री लहरें:** जलवायु व्यवस्था का एक प्रमुख घटक समुद्री लहरें हैं। पृथ्वी के 71% भाग में ये फैले हुए हैं एवं वायुमंडल या भूमि से दोगुना सौर विकिरणों को अवशोषित करते हैं। समुद्री लहरें ताप की एक बड़ी मात्रा को ग्रह के अन्य भागों में फैलाते हैं- यह मात्रा वायुमंडल के लगभग बराबर है। लेकिन समुद्र भू-भाग से घिरे हुए हैं, अतः जल द्वारा ताप का संचरन इन्हीं जल मार्गों से होता है। वायु समुद्र तल पर बहती है एवं समुद्री लहरों का निर्माण करती हैं। विश्व के कुछ भाग अन्य भागों की अपेक्षा समुद्री लहरों से अधिक प्रभावित होते हैं। जैसे पेरू का तट एवं अन्य निकटवर्ती क्षेत्र हम्बोल्ट लहरों से प्रभावित है, जो पेरू के तट के किनारे बहती है। प्रशान्त महासागर में अलनीनो की घटना दुनिया भर की मौसमी परिस्थितियों को प्रभावित करने का दम रखती है।

उत्तरी अटलांटिक ऐसा दूसरा क्षेत्र है जो समुद्री लहरों से बहुत प्रभावित है। यदि हम समान अक्षांश पर स्थित यूरोप एवं उत्तरी अमेरिका के स्थानों की तुलना करें तो प्रभाव तत्काल स्पष्ट हो जाता है। इस उदाहरण पर गौर करें- तटीय नॉर्वे के कुछ भागों का जनवरी में औसत तापमान- $2^{0}C$व जुलाई में $40^{0}C$ है; जबकि इसी अक्षांश पर अलास्का के प्रशांत तट का स्थान अत्यंत ठंडा है- $15^{0}C$ जनवरी में एवं केवल $10^{0}C$ जुलाई में। नॉर्वे के तटों पर बहने वाली गर्म लहरें ठंड में भी ग्रीनलैंड नॉर्वे के समुद्र में बर्फ जमने नहीं देती। आर्कटिक महासागर का शेष भाग दक्षिण से सुदूर होते हुए भी जमा रहता है। समुद्री लहरें या तो अपना मार्ग बदल लेती हैं या धीमी पड़ जाती हैं। समुद्र से निकलने वाली उष्मा का एक बड़ा भाग जल वाष्प के रूप में होता है जो कि पृथ्वी पर प्रचुरता में पाया जाने वाला ग्रीनहाउस गैस है। तथापि जल वाष्प बादल बनाने में भी मदद करते हैं जो स्थल को ढक कर शीतलता प्रदान करते हैं। इनमें सभी या किसी एक घटना का प्रभाव जलवायु पर पड़ सकता है जैसा कि 14,000 वर्ष पहले प्रथम हिम युग की समाप्ति पर हुआ माना जाता है।

(v) **सौर धब्बे:** सूरज एक चमकदार आग का गोला है। कहते हैं कि इसमें भी दाग है। इसमें निरंतर विस्फोट होता रहता है इस दौरान इसके सतह पर अनेक शक्तिशाली चुंबकीय क्षेत्र उत्पन्न होते रहते हैं, जो कभी-कभी काले धब्बे के रुप में प्रकट होते रहते हैं, जिन्हें सौर धब्बे कहते हैं। सौर धब्बा वास्तव में सूर्य के उन क्षेत्रों को कहा जाता है जहां से अधिक शक्तिशाली चुंबकीय क्षेत्र बहार की ओर निकलते हैं। सूर्य के अंदर से निकलते समय यह चुंबकीय क्षेत्र सूर्य को बहुत अधिक क्षति पहुंचाता है, जिससे सूरज में काले धब्बे दिखाई देते हैं। सूर्य के अन्य क्षेत्रों के मुकाबले सौर धब्बा का तापमान आमतौर पर अगल-अगल (ठंडा या गर्म) होता रहता है। वास्तव में ये सौर धब्बे सर्वदा जोड़ों के रुप में उभरते रहते हैं। मौसमी तथ्यों के विकास से यह पता लगा है कि सूर्य की क्रियाओं से होने वाले व्यवधान या सौर धब्बों की उपस्थिति के कारण सूर्य से आने वाली ऊर्जा में हल्का और सूक्ष्म परिवर्तन भी पृथ्वी के मौसम को प्रभावित करने की क्षमता रखता है। इस प्रकार के संबंधों का अवलोकन पहली बार चीनी खगोलविदों ने एक हजार वर्ष पहले किया था। हाल के समय में सौर धब्बा प्रति ग्यारह वर्षों के एक चक्र या सौर चक्र के बारे में पता चला है। यह सौर चक्र पृथ्वी के ऊपरी वायुमंडल में ध्रुवीय ज्योति और रेडियो ब्लैक आउट जैसे व्यवधानों से संबंधित होता है। सौर चक्र के दौरान सौर धब्बों की संख्या और प्रदीप्ति गतिविधि को उच्चतम से अधिकतम अवधि के रुप में प्रदर्शित किया जाता है।

विगत हजारों वर्षों के आंकड़े यह बताते हैं कि करीब एक हजार वर्ष पहले सौर चुंबकत्व बहुत अधिक हो गया था तब से प्रत्येक 300 सालों में या और अधिक समय में यह कम होता है। सूर्य के चुंबकीय क्षेत्र के कम होने पर पृथ्वी ठंडी होने लगती है। सौर चक्र के कारण सूर्य से आने वाली ऊर्जा में बहुत कम विचलन होता है, जिसकी मात्रा लगभग 0 से 1 प्रतिशत से भी कम होती है। कुछ वैज्ञानिक इस विचलन का पृथ्वी के क्षोभमंडल,

जहां सभी मौसमी घटनाएं घटित होती हैं, पर किसी प्रकार के प्रभाव की बात पर संदेह व्यक्त करते हैं। लेकिन यह संभव है कि सौर चक्र समताप मंडल को प्रभावित करता है जिसका पृथ्वी के मौसम पर प्रभाव पड़ता है। इस सम्भावना को नकारा नहीं जा सकता कि सौर चक्र के दौरान सूर्य से आने वाले समस्त विकिरणों की तुलना में पराबैंगनी विकिरणों में 10 गुना अधिक विचलन होता है जिससे समतापमंडल, जहां ओजोन पर्त पराबैंगनी विकिरणों को अवशोषित करती है, पृथ्वी के वायुमंडल का तापमान सौर चक्र के अनुसार बदलता रहता है।

मौन्डर न्यून एवं लघु हिम युग का पृथ्वी पर अवतरणः ऐतिहासिक आंकड़ों से सूर्य कलंकों और मौसम के संबंधों को जाना जा सकता है। इटली के खगोलविज्ञानी गैलीलियो गैलिली द्वारा सौर धब्बों की खोज के बाद के 70 वर्षों में यानी 1645 से 1715 तक की अवधि के दौरान सूर्य पर सौर धब्बे नजर नहीं आए थे। ब्रिटिश खगोलविज्ञानी एडवर्ड वाल्टर मौन्डर, जिन्होंने पिछले अभिलेखों (रिकार्डस्) में पहली बार इसे देखा था इसके नाम पर इस समय को 'मौन्डर न्यून' कहा जाता है। अभिलेखों से यह पता चलता है कि यह परिघटना पिछले कुछ समय के दौरान होने वाली उत्तरी ध्रुवीय ज्योति जैसी सौर गतिविधियों से भी संबंधित थी। इस अवधि को यूरोप एवं उत्तरी अमेरिका में आए छोटे हिम युग से भी जोड़ा गया। इस अवधि के दौरान खगोलविज्ञानियों ने 30 वर्षों के दौरान अवलोकित 40,000 से 50,000 सौर धब्बों की तुलना में केवल 50 सौर धब्बों को ही देखा था। सन् 1645 से 1715 यानी 70 वर्षों की यह विशिष्ट अवधि, जिस दौरान सूर्य कलंक प्रकट नहीं हुए थे, को मौन्डर न्यून कहते हैं।

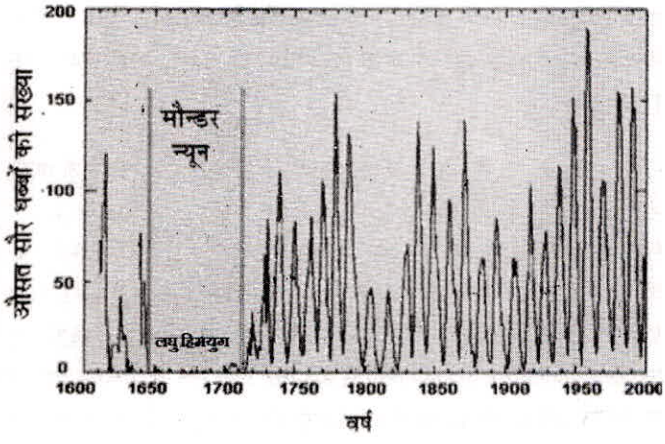

निम्न सौर गतिविधियों की अवधि में यानी सौर धब्बों की संख्या कम होने पर (सूर्य से आने वाली पराबैंगनी विकिरणों के घटने पर) पृथ्वी के क्षोभमंडल में ओजोन के निर्माण पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ सकता है जो महासागरों के तापन को परिवर्तित कर सकता है। इसके परिणामस्वरूप ठंड के दिनों में तापमान एक डिग्री सेल्सियस से दो डिग्री सेल्सियस तक कम हो कर नदियों के जमाव में सक्षम होने के साथ कृषि व अर्थव्यवस्था आदि क्षेत्रों को प्रभावित कर सकता है। हाल में यह देखा गया है कि वर्ष 2011 एवं 2012 के दौरान सौर धब्बों की संख्या में अत्यंत कमी का आंकलन किया गया है और ऐसी आशा व्यक्त कि जा रही है कि कहीं उपरोक्त वर्णित यूरोप के लघु हिम युग जैसी स्थिति आने का दस्तक तो नहीं । इस पर गहन शोध की आवश्यकता है।

मौसमी आंकड़ो से यह प्रमाणित हुआ है कि 19वीं सदी की तुलना में 20वीं सदी गर्म रही है। पिछली सदी में मौसम में तीन मुख्य बदलाव देखे गए-बढ़ती गर्मी जो 1940 के दौरान अपने शिखर पर थी, सन् 1970 तक औसत तापमान का कम होना और फिर गर्मी का बढ़ता जाना। अब वैश्विक स्तर पर इस बात पर सहमति हो गई है कि हाल के दशक में विश्व के अनेक स्थानों पर मौसम की अनिश्चितता और विश्व के औसत तापमान में वृद्धि यानी ग्लोबल वार्मिंग के लिए मानवीय गतिविधियों के कारण वायुमंडल में ग्रीन हाउस गैसों की बढ़ती मात्रा जिम्मेदार है। यद्यपि मौसम के निर्धारण में सूर्य महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है लेकिन मानव भी मौसम

को काफी हद तक प्रभावित करता है। इसलिए भविष्य में ग्लोबल वार्मिंग की समस्या से निपटने के लिए अभी से उचित कदम उठाने की आवश्यकता है। जलवायु परिवर्तन मानव के लिए खतरा है।

(vi) मानवीय कारणः 19वीं शताब्दी में औद्योगिक क्रांति के दौरान औद्योगिक क्रिया-कलापों के लिए बड़े पैमाने पर जीवाश्म ईंधन का प्रयोग देखने में आया। इन उद्योगों से रोजगार सृजन हुआ एवं लोगों ने ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर प्रस्थान किया। यह परम्परा आज भी चल रही है। पेड़-पौधों से भरी अधिक-से-अधिक भूमि को भवन निर्माण के लिए साफ किया गया। प्राकृतिक संसाधनों का विस्तीर्ण उपयोग निर्माण, उद्योगों, परिवहन एवं उपभोग के लिए किया जा रहा है। उपभोक्तावाद (भौतिक वस्तुओं की हमारी तृष्णा) में तीव्रतर वृद्धि हुई है जिससे कूड़ा-करकट का अंबार लग गया है। साथ ही हमारी जनसंख्या अविश्वसनीय सीमा तक बढ़ गई है।

इन सब से वायुमंडल में ग्रीनहाउस गैसों की वृद्धि हुई है। वाहनों को चलाने, उद्योगों के लिए विद्युत उत्पन्न करने के लिए, घर इत्यादि के लिए जीवाश्म ईंधन जैसे तेल, कोयला एवं प्राकृतिक गैसों से अधिकांश ऊर्जा की पूर्ति होती है। ऊर्जा क्षेत्र ¾ भाग कार्बन डाइआक्साइड, 1/5 भाग मिथेन एवं नाइट्रस आक्साइड की बड़ी मात्रा में उत्सर्जन के लिए उत्तरदायी है। यह नाइट्रोजन आक्साइड (NO_2) एवं कार्बन मोनोक्साइड (CO) भी उत्पन्न करता है जो यद्यपि ग्रीनहाउस गैसें नहीं है परंतु इनका वायुमंडल के रसायन चक्र पर असर पड़ता है जो ग्रीनहाउस गैसें नष्ट करती हैं।

जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

19वीं शताब्दी के अंत के बाद से पृथ्वी का औसत 0.3- 0.6°C तक बढ़ गया है। पिछले 40 वर्षों के दौरान, यह वृद्धि 0.2-0.3°C रही है। वर्ष 1860 के बाद से हाल के कुछ वर्ष बहुत गर्म रहे हैं। 1995 में, 2000 अग्रणी वैज्ञानिकों का एक समूह IPCC (जलवायु परिवर्तन पर अंतःशासकीय पैनल) पर चर्चा के लिए एकत्र हुए और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि भूमंडलीय ताप में वृद्धि वास्तविक है, गंभीर है एवं इसमें तेजी से वृद्धि हो रही है। उनके अनुसार अगले 100 वर्षों के दौरान पृथ्वी का औसत तापमान 1.4-5.8°C तक और बढ़ सकता है। वैसे तो यह चेतावनी महत्वहीन लगती है, क्योंकि पिछले लगभग 10,000 सालों में औसत तापमान में इतनी वृद्धि नहीं देखी गई। अतः इस प्रणाली में आये परिवर्तन निश्चय ही हमारे जीवन के कुछ महत्वपूर्ण पहलू को प्रभावित करेंगे।

गर्म मौसम से वर्षा एवं हिमपात में परिवर्तन, सूखा एवं बाढ़ में वृद्धि, हिमानी एवं ध्रुवीय हिम पट्टियों का पिघलना एवं समुद्र-तल का उठना तथा अंधड़ एवं चक्रवात की संख्या में वृद्धि का कारण जलवायु परिवर्तन माना जा सकता है। वर्षा एवं हिमपात के कारण बहुत सी नदियों में जल की उपलब्धता की बहुत कमी हो सकती है। कुछ में हिमनदों के पिघलने के कारण जल की मात्रा बढ़ सकती है जैसे- हिमालय से निकलने वाली नदियों का जलस्तर अचानक बढ़ना आदि।

समाधान

जलवायु परिवर्तन से गंभीर समस्याएं उत्पन्न होंगी जिनका समाधान सभी देशों को मिल कर करना होगा। वर्षों से, पर्यावरण समस्याओं पर चर्चाओं के लिए अनेक सम्मेलन आयोजित किए गए हैं एवं अनेक समझौतों पर हस्ताक्षर किए गए हैं। इस प्रक्रिया की शुरूआत 1972 में स्टाकहोम सम्मेलन से हुई लेकिन जलवायु परिवर्तन पर वार्तालाप का आरंभ 1990 में हुआ। इन वार्तालापों का परिणाम 1972 में जलवायु परिवर्तन

पर संयुक्त राष्ट्र प्राधार प्रतिज्ञा (United Nations Framework Convention on Climate Change) को अंगीकार करने के रूप में हुआ। चूँकि मानवीय क्रिया-कलापों का जलवायु पर काफी गहरा प्रभाव पड़ता है, अतः काफी समाधान हमारे अपने हाथों में है। हम जीवाश्म इंधन के उपयोग में कटौती कर सकते हैं, उपभोक्तावाद को कम कर सकते हैं, वन-विनाश को रोक सकते हैं एवं पर्यावरणभिमुख कृषि उपायों के उपयोग को बढ़ा सकते हैं। ऊर्जा क्षेत्र में, उत्सर्जन कम किया जा सकता है, यदि ऊर्जा की मांग कम की जाए और यदि हम ऊर्जा के ऐसे परिष्कृत स्रोत अपनाएं जिनसे कार्बन डाइआक्साइड का उत्सर्जन नहीं होता, इनमें सौर, वायु, भूताप एवं अणु ऊर्जा आदि शामिल है को अपनाया जा सकता है। अनेक देशों ने कोयले का उपयोग बंद कर दिया है एवं ऊर्जा के परिष्कृत रूप को अपनाया है। ऊर्जा दक्षता एवं वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों के विकास में जापान विश्व में अग्रणी है। विश्व के विकसित राष्ट्रों ने कार्बन क्रेडिट के द्वारा विकासशील देशों को धन का लालच देकर ग्रीनहाउस गैसों पर नियंत्रण का एक नायाब तरीका ढूंढ निकाला है, जिसे भारत जैसे देश विरोध कर रहे हैं, क्योंकि कार्बन क्रेडिट लेने से उनके भावी विकास कार्यों पर प्रतिकूल प्रभाव होगा। इसके लिए विकसित राष्ट्रों को कार्बन क्रेडिट देने के बजाय अपने गैस उत्सर्जन को रोकने के कारगर उपाय ढूंढने होंगे।

ऊर्जा के वैसे साधन जिनको दोबारा निर्मित नहीं किया जा सकता है, के उपयोग में कमी कर तथा निर्मित साधनों का उपयोग बेशक ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को पर्याप्त मात्रा में कम करेगा। ग्रीनहाउस गैसों की इस कमी का लोगों के स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। इसके अतिरिक्त, साफ ईंधन तथा ऊर्जावान तकनीक को अपनाने से अस्थायी प्रदूषकों को कम किया जा सकता है। इस प्रकार, स्वास्थ्य पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ेगा। उच्च तकनीकों के प्रयोग से आजकल BS4 इंजन का प्रयोग बढ़ा है एवं परिवहन क्षेत्र में कड़े उत्सर्जन नियम अपनाए जा रहे हैं। वनों का विस्तार, जैव-तकनीकी के उपयोग से फसलों में जल मांग को नियंत्रित करके तथा धान आदि के विशेष किस्मों का विकास करके जिसमें पानी की कम खपत हो ग्लोबल वार्मिंग की विभीषिका को कम किया जा सकता है।

******